तोड़ती पत्थर -सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

वह तोड़ती पत्थर;
देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर-
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार:-
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।

चढ़ रही थी धूप;
गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप;
उठी झुलसाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगीं छा गई,

प्रायः हुई दुपहर :-
वह तोड़ती पत्थर।

देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्नतार;
देखकर कोई नहीं,
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं,
सज़ा सहज सितार,
सुनी मैंने वह नहीं जो थी सुनी झंकार।

एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा-

"मैं तोड़ती पत्थर।"